TOPIC: श्रीमद्भगवदगीता में निष्काम कर्मयोग

MOBILE NO: 7839270596, 7979872919, E-MAIL ID: sakanksha806@gmail.com

कुरुक्षेत्र की धर्म भूमि में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया था, वो श्रीमद्भगवदगीता के नाम से प्रसिद्ध है। यह महाभारत के भीष्मपर्व का अंग है। गीता में 18 अध्याय और 700 श्लोक हैं। गीता की गणना प्रस्थानत्रयी में की जाती है, जिसमें उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र भी सम्मिलित हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार गीता का स्थान वही है, जो उपनिषद् और धर्मसूत्रों का है। उपनिषदों को गौ और गीता को उसका दुग्ध कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि उपनिषदों की जो अध्यात्म विद्या थी, उसको गीता सर्वांश में स्वीकार करती है। उपनिषदों की अनेक विद्याएँ गीता में हैं। जैसे, संसार के स्वरूप के संबंध में अश्वत्थ विद्या, अनादि अजन्मा ब्रह्म के विषय में अव्ययपुरुष विद्या, परा प्रकृति या जीव के विषय में अक्षरपुरुष विद्या और अपरा प्रकृति या भौतिक जगत के विषय में क्षरपुरुष विद्या। इस प्रकार वेदों के ब्रह्मवाद और उपनिषदों के अध्यात्म, इन दोनों की विशिष्ट सामग्री गीता में निहित है। उसे ही पुष्पिका के शब्दों में ब्रह्मविद्या कहा गया है।

गीता में 'ब्रह्मविद्या' का आशय निवृत्तिपरक ज्ञानमार्ग से है। इसे सांख्यमत कहा जाता है जिसके साथ निवृत्तिमार्गी जीवनपद्धति जुड़ी हुई है। गीता में गृहस्थों के प्रवृत्ति धर्म को निवृत्ति मार्ग के समकक्ष रखा गया। जिसका संकेत देनेवाला गीता की पुष्पिका में 'योगशास्त्रे' शब्द है। यहां 'योगशास्त्रे' का अभिप्राय नि:संदेह कर्मयोग से ही है। गीता में योग की दो परिभाषाएं हैं। एक निवृत्ति मार्ग की दृष्टि से जिसमें 'समत्वं योग उच्यते' कहा गया है अर्थात् गुणों के वैषम्य में साम्यभाव रखना ही योग है। सांख्य की स्थिति यही है। योग की दूसरी परिभाषा है 'योग: कर्मसु कौशलम' अर्थात् कर्मों में लगे रहने पर भी ऐसे उपाय से कर्म करना कि वह बंधन का कारण न हो और कर्म करनेवाला उसी असंग या निर्लेप स्थिति में अपने को रख सके जो ज्ञानमार्गियों को मिलती है। इसी युक्ति का नाम बुद्धियोग है और यही गीता के योग का सार है।

गीता के दूसरे अध्याय में जो 'तस्य प्रज्ञाप्रतिष्ठिता'है, उसका अभिप्राय निर्लेप कर्म की क्षमतावली बुद्धि से ही है। यह कर्म के संन्यास द्वारा वैराग्य प्राप्त करने की स्थिति नहीं बल्कि कर्म करते हुए मन को वैराग्यवाली स्थिति में ढालने की युक्ति थी। यही गीता का कर्मयोग है। गीता में सांख्य के निवृत्ति मार्ग और कर्म के प्रवृत्तिमार्ग की पूर्ण व्याख्या की गई है।

निष्काम कर्मयोग:

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥॥47॥

अर्थात तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू फल की दृष्टि से कर्म मत कर और न ही ऐसा सोच की फल की आशा के बिना कर्म क्यों करूं।

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को निष्काम कर्मयोग का उपदेश देते हुए कहते हैं, "जो सुख-दुख, सर्दी-गर्मी, लाभ-हानि, जीत-हार, यश-अपयश, जीवन-मरण, भूत-भविष्य की चिन्ता न करके मात्र अपने कर्तव्य कर्म में लीन रहता है, वही सच्चा निष्काम कर्मयोगी है।

परमात्मा स्वंय सृष्टि का नियामक संचालक होते हुए भी हमें विवेक बुद्धि देकर हमें कर्मों का अधिष्ठाता बनाया है। हमें कर्म करने की पूरी छूट है। चाहे तो हम सत्कर्म का मार्ग अपनाकर आत्मिक प्रगति की ओर बढ़ सकते हैं अथवा दुष्कर्मों में प्रवृत्त होकर अपनी अवनति का मार्ग प्रशस्त कर लें। भले बुरे कर्मो के लिए पूर्ण रूपेण उत्तरदायी मनुष्य ही हैं। मन की अपेक्षा यदि अपनी गतिविधियों को आत्मप्रेरणा के अनुरूप परिचालित किया जाए तो हम कभी दुष्कर्म की ओर नहीं बढ़ेंगे।

अनासक्त कर्मयोग शब्द स्वंय भी अपने वास्तविक आशय को प्रकट करता है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है- अनासक्त और कर्मयोग। अनासक्त का अर्थ है राग, मोह, प्रीति न रखना। अंहकार की उत्पति आसक्ति से होती है। दूसरा शब्द है कर्मयोग। गीता इसकी व्याख्या करती है, "योग: कर्मसु कौशलम्"- कर्म में कुशलता ही योग है। कार्य कुशल वही हो सकता है जिसे उचित अनुचित कर्मों के बीच स्पष्ट अन्तर का बोध हो। कुशल शब्द के अन्तर्गत सत्यं, शिवं, सुन्दरम का भाव है। इसलिए कार्य कुशलता में अशुभ कर्मों के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। अनासक्त कर्मयोग का वास्तविक तात्पर्य यही है कि किसी भी काम को पूरी कुशलता के साथ,अभिमान छोड़कर किया जाए और उसके फल के प्रति निर्लिप्त रहा जाए। निष्काम कर्मयोग के तत्व दर्शन को हृदयंगम करने और राजमार्ग का अवलम्बन लेकर साधक संसार में रहते हुए उच्चस्तरीय आनन्द प्राप्त कर सकता है।

निष्कर्ष:

अत: गीता वर्तमान परिपेक्ष में उतना ही प्रासंगिक है जितना पहले रहा था। यह जीवन दर्शन है, जिसमें निष्काम कर्म योग के द्वारा कर्म करने की प्ररेणा भगवान श्री कृष्ण द्वारा दी जाती है। निष्काम भाव से कर्म करना तथा फल में समबुद्धि रखना ही वास्तविक कर्मयोग है। निष्काम कर्मयोग हेतु साम्य बुद्धि प्राप्त करने के साधन हैं- अभ्यास, ज्ञान और ध्यान। सारी इच्छाओं (लौकिक) का परित्याग करने पर ही व्यक्ति की बुद्धि स्थिर होती है। स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति दुखों से घबराता नहीं है। ज्ञानी को सुख-दुख अनुभव नहीं होता। सुख व दुख के भाव तो केवल आसक्ति से उत्पन्न होते हैं। परमात्मा संसार के कण-कण में व्याप्त हैं। वो ही संसार की प्रत्येक वस्तु का आधार है। जिन्होंने यह अनुभव कर लिया है कि सब स्थानों पर वहीं ब्रह्म व्याप्त है उन्हें ही मोक्ष प्राप्त होता है।

संभवत: संसार का दूसरा कोई भी ग्रंथ कर्म के शास्त्र का प्रतिपादन इस सुंदरता, इस सूक्ष्मता और निष्पक्षता से नहीं करता। इस दृष्टि से गीता अद्भुत मानवीय शास्त्र है। इसकी दृष्टि एकांगी नहीं, सर्वांगपूर्ण है। गीता में दर्शन का प्रतिपादन करते हुए भी जो साहित्य का आनंद है वह इसकी अतिरिक्त विशेषता है। तत्वज्ञान का सुसंस्कृत काव्यशैली के द्वारा वर्णन गीता का निजी सौरभ है जो किसी भी सहृदय को मुग्ध किए बिना नहीं रहता। इसीलिए इसका नाम भगवद्गीता पड़ा, भगवान् का गाया हुआ ज्ञान।